सातवां अध्याय

वैश्वीकरण का परिप्रेक्ष्य और संजीव का कथा-साहित्य

भूमंडलीकरण एक प्रक्रिया है, जिसका संबंध मूलतः अर्थ-व्यवस्था से है। इसके अंतर्गत विविध राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की प्रक्रिया एवं उनके प्रतिफलन का समन्वय अंतर्राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के साथ किया जाता है। इसके अंतर्गत व्यापार, संचार, उत्पादन, पूँजी आदि साधनों का आदान-प्रदान दुनिया के विभिन्न हिस्सों में होता है। तकनीकों का आदान-प्रदान, व्यापार ही आज विश्व-बंधुत्व का आधार बन गया है। परंतु इस बंधुत्व में भावना *'वसुधैव कुटुम्बकम्'* वाला नहीं है। आज पूरा विश्व एक बाजार है। विश्व को परिवार मानने की धारणा का लोप हो चुका है। परिवार तो संवेदना से चलती है, परंतु बाजार बहुत ही कठोर और संवेदनहीन है। बाजार का मुख्य उद्देश्य मुनाफा कमाना है, चाहे इसके लिए उसे किसी भी हद तक शोषक एवं जल्लाद बनना पड़े। वैश्वीकरण के इस दौर में, सभी में आगे बढ़ने की होड़ मची है और इस प्रक्रिया में वे हजारों-लाखों की बलि चढ़ाने से भी नहीं हिचकिचा रहे हैं। पूँजी आज मुट्ठी भर लोगों की वंदिनी है, जिससे बहुसंख्यक आबादी हाशिये पर आ गई है और ये हाशिये के लोग निरंतर हार झेलने को अभिशप्त हैं। इस उपभोक्ता संस्कृति ने हमें अपने मायावी पाश में जकड़ लिया है। वैश्वीकरण का मूल उद्देश्य-विश्व के कमजोर, गरीब और पिछड़े देशों के अर्थ-व्यवस्था, संसाधनों एवं श्रमों पर अपना आधिपत्य जमाना है। आज इस बाजारवादी संस्कृति का मुखौटा पूरी दुनिया के सामने खुल चुका है, वह पूरी दुनिया को सौंदर्य प्रतियोगिता के नाम पर अंग प्रदर्शन, सेक्स और शराब जैसे ग्लैमर में उलझा कर भूख, बेरोजगारी, गरीबी, अशिक्षा जैसे मुद्दों को हाशिये पर ढकेल दे रहे हैं।

आज किसी देश को दूसरे देश पर आधिपत्य जमाने के लिए उस पर प्रत्यक्ष रूप से आक्रमण करने की आवश्यकता नहीं है बल्कि यह काम अब बाजारवाद और उपभोक्ता संस्कृति के जिम्मे है। पूँजीवादी शक्तियाँ बाजार के माध्यम से तीसरी दुनिया के देशों में घुसपैंठ कर उसकी अर्थव्यवस्था को अपने चंगुल में फँसा रही हैं। आज व्यक्ति अपने जरूरतों को स्वयं तय नहीं करता है बल्कि बाजार व्यक्ति की जरूरतों को तय करता है। बड़े-बड़े शॉपिंग मॉल, ऑनलाइन मार्केटिंग, मेगा बाजारों द्वारा ग्राहकों को ललचाने के लिए ग्लैमर, ऑफर

इत्यादि हमारी भोगवादी लिप्सा को बढ़ावा दे रहे हैं। 'वालमार्ट', 'एमाजॉन', 'बीग-बाजार' जैसी बड़ी कंपनियों के बाजार में कुदने के कारण अनेक छोटे-छोटे व्यवसाय, कुटरी उद्योग, लघु-कुटीर उद्योग का अस्तित्व संकट के दौर से गुजर रहा है। इस वैश्विक वित्तिय पूँजी और बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने खुदरा बाजार को नष्ट कर बेरोजगारों की फौज खड़ी कर दी है। इन सभी कार्यों में सबसे बड़ी सहयोगी रही है प्रौद्योगिकी एवं सूचना क्रांति, क्योंकि आज जमाना कंप्यूटर और इंटरनेट का है, जिसने परी दुनिया को एक गाँव में बदल दिया है।

हमारे समाज और संस्कृति पर भी इस बाजारीकरण का व्यापक प्रभाव पड़ा है। हालांकि हमारे देश में प्राचीनकाल से विभिन्न संस्कृतियों का प्रवेश होता रहा है और वे समय के साथ-साथ हमारी भारतीय संस्कृति में घुलमिल गई हैं। परंतु वैश्वीकरण के कारण पश्चिमी देशों का प्रभाव हमारे खान-पान, रहन-सहन, पहनावे, शिष्टता और नैतिकता सभी पर पड़ने लगा है। पहले यह प्रभाव नगरों तक सीमित था परंतु अब इसका अनुप्रवेश ग्रामीण जीवन में भी हो गया है, जिससे हमारी संस्कृति की नैतिक विशेषताएँ क्षीण होती जा रही हैं। वैश्वीकरण का प्रभाव आज कला, सौंदर्य एवं हमारे पर्व-त्योहारों पर भी पड़ रहा है। अब हमारे बहुत से देवी-देवताओं की छोटी-बड़ी सभी मुर्तियाँ चीन से बनकर आ रही हैं। भारतीय हस्तकला और मूर्तिकला भी विदेशी मांगों के अनुरूप परिवर्तित हो रही हैं। फलों और फसलों के उत्पादन का तरीका एवं रूप भी अंतरराष्ट्रीय बाजारों के अनुरूप बदलता जा रहा है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में साहित्य कर्म भी चुनौतियों से गुजर रहा है। मीडिया की चकाचौंध और भौतिक सुखों की चाह ने बड़े-बड़े कलाकारों आदि को बाजार से जुड़ने के लिए बेचैन कर दिया है। मानविक और सामाजिक हितों की उनकी समझ भटकी-सी नजर आ रही है। आज कला बाजार में बिकती है। अपने आप को बड़े-से-बड़ा जनवादी लेखक कहने वाले रचनाकार भी आज बाजारवाद की दौड़ में शामिल हो चुके हैं। इनका उद्देश्य रचनाओं को जनता तक पहुँचाना नहीं अपितु बेचना है। क्योंकि जो रचनाकार रचनाओं को जनता तक पहुँचाना चाहेंगे वे जनता की भावनाओं का ध्यान रखेंगे और जो उसे बेचना चाहेगा वह कोई भी तिकड़म अपना कर रचनाओं में सनसनी उत्पन्न कर उसे जनता तक परोसेगा। ऐसे लेखकों

का उद्देश्य रचनाओं को एक प्रोडक्ट के रूप में परोस कर उससे मुनाफा कमाना है। डॉ. सुभाषचंद्र गुप्त के शब्दों में समझें तो बाजारवाद एवं पूँजीवाद आम जनता को हाशिये पर ढकेल देने का कुचक्र रच रही है –"जहाँ ई-कामर्स की संपदा है, माता का जागरण है, ब्यूटी कॉन्टेस्ट है, सौंदर्य और आधुनिकता के नाम पर नग्न प्रदर्शन है और संस्कृति का बाजारीकरण माइकल जैक्शनों और मेडोनाओं को जन्म दे रहा है, जहाँ न भूख है, न सूखा, न उजड़ते खेत और न जहर खाते किसान।"[1] आज चारों ओर खीरदने-बेचने की प्रवृत्ति की बाढ़ है। ई-मेल, ई-कॉमर्स, इंटरनेट के माध्यम से सूचनाओं की बारिश है। विज्ञापनों और प्रयोजकों का बोलबाला है। इसका प्रभाव इतना है कि बड़े-से-बड़ा अखबार का प्रथम पृष्ठ विज्ञापन से ढँका रहता है, अर्थात आप बिना अखबार खरीदे देश-दुनिया की मुख्य समाचार से अवगत नहीं हो सकते जबकि भूमंडलीकरण के पहले अखबार खरीदने में असमर्थ व्यक्ति भी अखबार की सुर्खियों पर नजर डाल सकता था। अपने अखबार की बिक्री बढ़ाने के लिए ये अखबारों के कई पेजों को फिल्मी हस्तियों के ग्लैमर से सजाते हैं। आज सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रायोजक तंबाकू और सिगरेट बेचने वाली कंपनियाँ हैं। आज सभी प्राइवेट टी.वी. चैनल किसी न किसी राजनीतिक दलों के शरण में हैं और सम्प्रचार में अपने प्रायोजक दलों के हितों का ध्यान रखते हैं। खैर जो भी हो चिंतन और सृजन की एक और धारा भी है जो इस बाजारीकरण के दौर में भी संजीवनी का कार्य कर रही है। इसमें कबीर, निराला, दिनकर, नागार्जुन, मुक्तिबोध, धूमिल, महाश्वेता देवी जैसी रचनाकार हैं, जिनके लिए जनता का हित ही सर्वोपरि था। जिनकी रचनाएँ किसानों, मजदूरों, आदिवासियों, दलितों तथा प्रत्येक शोषित पीड़ित आम जनता के साथ खड़ी है। शोधार्थी का मानना है कि संजीव भी इसी धारा को मानने वाले जनधर्मी कलाकार हैं। उनका पूरा कथा-साहित्य मानवीय संवेदना एवं सामाजिक सापेक्षता की मिसाल है। शोषित और शोषकों के बीच का अनगढ़ यथार्थ है। उनका कथा-साहित्य

---

1. *कुमार शशिभूषण (संपादक), 'भूमंडलीकरण साहित्य समाज और संस्कृति', आलेख गुप्त सुभाषचंद्र, 'भूमंडलीकरण एवं साहित्यकर्म की चुनौतियाँ', प्रथम संस्करण : 2013, ऐक्सिस बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 14*

सामाजिक-व्यवस्था में हस्तक्षेप करता है। वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में भी उनकी कहानियों को लक्षित किया जा सकता है। बेरोजगारी, कुटीर उद्योग एवं लघु कुटीर उद्योगों का समापन, मछुआरों के जीवन में बड़ी-बड़ी कंपनियों के ट्रालरों का प्रवेश, वैज्ञानिकों का पूँजीपतियों द्वारा दोहन, सर्कस मालिकों एवं उद्योगपतियों द्वारा क्रमशः सर्कस कलाकारों एवं मजदूरों का शोषण, सरकारी प्रतिष्ठानों का निजीकरण आदि अनेक वैश्वीकरण के मुद्दों को संजीव अपने कथा-साहित्य में उठाते हैं।

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्यों को परिभाषित एवं विश्लेषित करती इनकी कुछ प्रमुख कहानियाँ **'क़िस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का'**, '**खोज', 'नस्ल', 'ट्रैफिक जाम', 'ब्लैक होल', 'जे एहि पद का अरथ लगावे', 'हलफनामा', 'आहट', 'भूमिक'** इत्यादि है। मध्यवर्ग के अंदर पैदा हुए उपभोगवादी नजरिये का तीव्र विरोध वे अपनी पहली ही कहानी 'क़िस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का' में करते हैं। बीमा कंपनी के एजेंट द्वारा कार प्राप्त करने की उच्च आकांक्षा रखना सुविधा लोलुपता के कारण है। यह सुविधालोलुपता युवा समाज को संवेदनहीन बनाये जा रही है और वे आपस में भयानक प्रतिस्पर्द्धा का शिकार हो रहे हैं। पिछले तीन-चार दशकों में यह प्रवृत्ति खतरनाक ढंग से बढ़ी है। विश्व के सबसे ज्यादा युवा हमारे देश में हैं, वैश्वीकरण के इस दौर में जहाँ पूरा विश्व ही एक बाजार है, विकासशील देशों के लिए चुनौतियाँ सर्वाधिक हैं। विश्व बाजार से प्रतिस्पर्धा कर विकसित देशों के दाम पर समान उपलब्ध करवाने के लिए तकनीक का विकास अभी तक हमारे देश में नहीं हो पाया है। ऐसी स्थिति में नये रोजगार की सृष्टि तो दूर पुरानी नौकरियाँ बचाना ही मुश्किल हो गया है। बहुत सारे उद्योग लोगों की छँटनी कर रहे हैं, वी.आर. एस. दे रहे हैं, तो सरकारी प्रतिष्ठान निजीकरण की तरफ मुड़ रहीं हैं। ऐसी स्थिति में देश का युवा मानसिक अवसाद से गुजर रहा है। सरकारें इन समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने के बजाय देश के युवाओं का ध्यान इन मुद्दों से भटकाकर धर्म, राष्ट्र और राष्ट्रीयता के जाल में उलझाये हुए हैं। कथाकार इन शिक्षित बेरोजगार युवाओं की पीड़ा को बखूबी समझता है तभी तो **'क़िस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का'** के माध्यम से सरकार पर व्यंग्य कसता है –"हर पढ़ा-लिखा युवक अगर नौकरी ढूँढ़ेगा तो कहाँ से आएगी इतनी सारी नौकरियाँ! नौकरी की ऐसी ज़रूरत भी क्या है जब कि

रोज़गार की अन्य उन्नत संभावनाएँ सामने पड़ी हों।"[2] और ये उन्नत संभावनाएँ बीमा कंपनी के एजेंट के रूप में हैं। सरकार इन शिक्षित बेरोजगार युवाओं को विश्वबाजार रूपी समुद्र में फेंक देती है जहाँ हर बड़ी मछली छोटी मछली को निगलने के लिए तत्पर है। कथानायक फ़ीयरलेस इंश्योरेंस कंपनी का एजेंट बन जाता है जहाँ साल में बारह केस देने का टार्गेट है। कथानायक यह महसूस करता है कि कहीं बीमा करवाने वाले व्यक्तियों से एजेंटों की संख्या अधिक तो नहीं? उसे अपनी स्थिति मंदिर के बाहर खड़े पंडों या स्टेशनों में खड़े कुलियों के समान प्रतीत होती है। जो एक ही ग्राहक पर अपना हक जमाने के लिए तू-तू, मैं-मैं करते हैं, क्योंकि कथानायक एक ही ग्राहक के पास एक ही दिन में दो-दो, तीन-तीन एजेंटों को आते-जाते देखता है। यहाँ इंश्योरेंस कराने वाले एजेंटों के नौकरी का खुद ही कोई इंश्योरेंस नहीं है और सरकारें बेरोजगारी को उखाड़ फेकने का दावा करती है। **'हत्यारा'** कहानी में गाँव के बेरोजगार युवक ही प्रदीप के पिता के घर में डाका डालते हैं, परंतु प्रदीप के पिता उन नवयुवकों को दोष न देकर अपने उद्योगपति बेटे प्रदीप को ही हत्यारा करार देते हैं। आई. आई. टी. और एम.बी.ए. पास अपने बेटे प्रदीप को वे जीनियस नहीं अपितु क्रितदास मानते हैं। पूँजीपतियों के ज़रखरीद गुलाम! प्रदीप यूनिवर्सल पाइप कंपनी का सी.ई.ओ. बनकर एक ऐसा कुटनीतिक मरणफाँस तैयार करता है जिसमें दूसरी कंपनियाँ और ग्राहक सभी समा जाते हैं। पहले तो वह अपनी कंपनी के पाइप को लागत से आधे मूल्य पर सप्लाई करना शुरू कर देता है। मजबूर होकर दूसरी कंपनियों को भी पाइप के दाम घटाने पड़ते हैं। इसी क्रम में छह कंपनियाँ बंद हो जाती हैं और बाकी दो-तीन साल में युनिर्वसल के आगे समर्पण कर देती हैं। अब प्रदीप उन कंपनियों को अपने शर्त पर खरीदता है। बाजार पर एकाधिकार जमाकर अब वह पाइप की कीमत दो गुनी, तीन गुनी कर देता है। चालीस वर्ष से अधिक उम्र के मजदूरों को वह काम से निकालकर मजदूर एकता में फूट डाल देता है। इस प्रकार बाजारवाद के प्रभाव ने नये रोजगार की सृष्टि के बजाय उनसे उनके पुराने रोजगार भी छिन लिए। आज

---

2. संजीव, 'क़िस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण: 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 13

एफ.डी.आई. और बड़े-बड़े मॉलों के आड़ में कई छोटे-छोटे दुकानदार और लघु-उद्योग या तो समाप्त हो गए हैं या समापन के कगार पर हैं। कथाकार संजीव ने प्रदीप के पिता के माध्यम से पूँजीपतियों और पूँजीपतियों के ज़रखरीद गुलामों को, उजड़े मुहल्लों, कारखानों और बेरोजगारी का दोषी करार दिया है और उन्हें **'हत्यारा'** घोषित किया है।

'नस्ल' कहानी में भी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ मध्यवर्गीय प्रतिभा को खरीद कर उसका इस्तेमाल अपने हित में करती हैं। जिस प्रतिभा का उपयोग परिवार, समाज, राष्ट्र, जाति या दुनिया के बेहतरी के लिए हो सकता था, वह बनिया का कारोबार बढ़ा रहा है। उसके पास माँ, पिता, बहन, बहनोई, समाज के लिए अवकाश नहीं है, वह बाजार की अंधी दौड़ में शामिल है, उसके पिता उसे अगाह करते हैं –"तुम जिस अंधी दौड़ में शामिल हो, उसमें कल को अगर तुमसे भी तेज-तर्रार कोई आया तो तुम अब्स्लीट टेक्नोलॉजी की तरह कंपनी के द्वारा निकाल न दिए जाओ।"[3] परंतु वह इसे गलत नहीं मानता है क्योंकि वह अपनी नियति जानता है, वह जानता है कि इन्हीं मान्यताओं पर बाजार और कंपनियाँ टिकी हैं। वह बनियों की बोली बोलता है और भारत समेत तृतीय विश्व के लोगों के पिछड़ेपन का मूल कारण उनके जाहिल और अकर्मण्य बने रहने को मानता है, बढ़ती आबादी को भी वह दोष देता है। मार्क्सवाद, साम्यवाद या गांधीवाद जैसे युटोपिया को वह सिरे से खारिज कर देता है और मनुष्य के मुक्ति का मार्ग विज्ञान और टेक्नोलॉजी के विकास में देखता है। उसका मानना है कि आज इलेक्ट्रॉनिक्स, जींस, टीशु, अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी में ज्ञान के विस्फोट का समय है और गांधीवाद, मार्क्सवाद और साम्यवाद जैसे शब्द तो कहीं-कहीं इनके मार्ग में रोड़ा भी खड़ा करते हैं। वह नैतिकता के सारे पाठ भूल जाता है। वह भूल जाता है कि जिन भारतीयों को वह जाहिल और अकर्मण्य कह रहा है उन्हीं के सहयोग से उसे स्कॉलरशिप मिली, तब जाकर वह इंजीनियर बन पाया। यहाँ तक कि मुंबई में उसके बीमार पड़ने पर यही जाहिल लोग उसके लिए अपना खून, किडनी, लीवर, हार्ट सब देने को तैयार थे। और जहाँ तक अकर्मण्यता का सवाल है तो

---

3. संजीव, 'नस्ल', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 349

जमनालाल जी स्वयं मानते हैं कि जो रिश्तेदार या समाज के लोग तुमसे मिलना चाहते हैं, उनमें से अधिकांश मेहनती, ईमानदार और स्वस्थ्य हैं, बस कमी है तो सिर्फ एक बात की - -स्कोप।

आज हमारे सांस्कृतिक मूल्यों का इतना तेजी से क्षय हो रहा है कि इसमें घर, परिवार, रिश्ते, सामाजिक संबंध सब एक बाजार के रूप में परिणित हो चुका है। मध्यवर्गीय परिवार की बढ़ती हुई आकांक्षाएँ, इच्छाएँ और भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे अंधी दौड़ की नियति मुँह के बल गिरना है। इस उपभोक्तावादी संस्कृति में, पैसों की बेतहासा दौड़ में मनुष्य केवल एक मोहरा बनकर रह गया है। नैतिक मूल्यों के पतन का 'काउंट डाउन' शुरू हो गया है। **'ब्लैक होल'** कहानी में एक सामान्य गृहणी अलका जी अपने करोड़पति पड़ोसियों से प्रतिस्पर्द्धा करती हैं और उपभोग की सारी सामग्री न जुटा पाने के कारण पति को 'डल' कहती हैं। जब उनके पति इस भौतिकतावादी दौड़ में शामिल नहीं होते हैं तो वह अपनी सारी आशाओं-आकाँक्षाओं का बोझ अपने पुत्र अंक पर डाल देती हैं। वह अपने बेटे को एडूकेशन में टॉप पर देखना चाहती हैं जिसके लिए उसके उपर पढ़ाई का इतना बोझ डाल देती हैं कि उसे रेस का घोड़ा बना देती हैं। क्योंकि वह मानती हैं कि आज जमाना 'फास्टलाइफ', 'फास्टफूड' और ' यूज एँड थ्रो' का है और आज प्रायः मध्यवर्गीय व्यक्ति इस फास्टलाइफ की अंधी दौड़ में शामिल है। कथाकार संजीव परमेश्वर प्रसाद के माध्यम से पूरे मध्यवर्ग को सावधान करते हैं –"यह सिस्टम ऐसा है कि एक ओर तुम्हें ललचाने, भरमाने के लिए उसकी हज़ार बाँहें फैली हुई हैं, दूसरी ओर है यह गलाकाटू होड़। ऑनर्स प्राइड एँड नेबर्स एन्वी वाला ज़हर इंजेक्ट करता हुआ हमारी नसों में। जैसे एक टुकड़ा ऊपर झूलाता हुआ हम सबों को निरंतर कुत्तों में तब्दील करता जा रहा है। तुम्हें कोई लगातार हॉक रहा है – अप! अप!! दौड़ते-दौड़ते मुँह में झाग भर गया है, फिर भी दौड़ो और, और तेज दौड़ो वरना तुम पिछड़ जाओगे।"[4] परमेश्वर प्रसाद अपनी पत्नी जिसकी निगाह सिर्फ 'सर्वोत्तम' पर टिकी रहती है,

---

4. *संजीव, 'ब्लैक होल', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 259*

को समझाते हैं कि 'तम' का एक अर्थ 'अंधकार' भी होता है। और इस परिवर का हश्र भी यही होता है। फिजिक्स की परीक्षा में एक न्यूमिरीकल हल न कर पाने के कारण 'अंक' आत्महत्या कर लेता है। प्रमुख समाजशास्त्री दरखायम इस प्रकार की आत्महत्या को विनाशकारी आत्महत्या (fatalistic suicide) मानते हैं –"दरखायम ने कहा ऐसे व्यक्ति जो अपनी अवस्था से मुक्ति चाहते हैं परंतु गंभीर अनुशासन के कारण असहाय होते हैं, आत्महत्या करते हैं। उन्होंने गुलामों का उदाहरण दिया जो अपनी प्रत्येक गतिविधि में नियंत्रित होते थे, उनकी हर साँस पर पहरा होता था। इस पहरेदारी और बंधन से तंग आकर वह आत्महत्या कर लेता है। भारत में मध्यवर्गीय बच्चे से माँ-बाप को बहुत अधिक अपेक्षाएँ होती हैं, इसलिए परीक्षा में असफल होने पर बच्चे आत्महत्या करने पर उतारू हो जाते हैं।"[5] उपभोक्तावादी नजरिए के कारण उनकी पूरी दुनिया लुट जाती है।

आज हम स्पेस टेक्नोलॉजी और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में काफी उन्नति कर चुके हैं। मंगलग्रह की यात्रा हमारा देश कर चुका है। चंद्रयान की सफलता महज कुछ मीटर दूर रह गई है। परंतु चंद्रयान की सफलता का हमारे वैज्ञानिकों को पूर्ण विश्वास है। विज्ञान, तकनीक और सूचना क्रांति की संभावनाओं से लैस मनुष्य आज अंतरिक्ष की यात्रा कर रहा है। **'काउंट डाउन'** कहानी में मंगल ग्रह यात्रा के दौरान अंतरिक्ष यान में बैठे वैज्ञानिक प्रकाश का यह मानना है कि कभी मंगल ग्रह पर भी जैविक सभ्यता रही होगी, जो प्राकृतिक विपर्यय, अंधी खुदगर्ज विकास यात्राओं के दुष्परिणाम या स्टारवार्स से नष्ट हो गई होगी? स्पेश में बैठे-बैठे वह पृथ्वी पर हो रहे 'मानव मूल्यों' की समाप्ति पर सोचता है कि कहीं यह मानव सभ्यता के समाप्ति का 'काउंट डाउन' तो नहीं। वह सोचता है जाति-पाति और छुआछूत से घिरी माँ, डींग हाँकते पापा, सोमालिया में सरकार द्वारा तय मजदूरी माँगने पर कृषकों-मजदूरों को लातों-जूतों से पीटते जमींदार के गुंडे, पुलिस-गुंडे और सामंतों के मिलीभगत से दिन के उजाले में औरतों को नंगा करके हाँकना, भजन-पूजन और पदयात्रा के नाम पर लूट, विकसित देशों द्वारा अपने-

---

5. हुसैन मुजतबा, 'समाजशास्त्रीय विचार', प्रथम संस्करण : 2010, पुनर्मुद्रण : 2012, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 114

अपने हथियार छुपाकर दूसरे देश के हथियारों को नष्ट करने का सुझाव, गोरों की चाबुक से कराहते अश्वेतों की भीड़, यह मानव सभ्यता के विनाश का काउंट डाउन नहीं तो और क्या है? कथाकार हमें सावधान करता है क्योकि आज पूँजीपतियों के वश में पर्यावरण भी है। सबसे अधिक गैस उत्सर्जित करने वाले देश पर्यावरण संरक्षण की बात करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की उन ऊँची इमारतों की कथनी और करनी में काफी अंतर है। इसलिए कथाकार यहाँ मानव मूल्यों और धरती की समस्याओं का अध्ययन करता है जब तक हम धरती की समस्याओं का सूक्ष्म अध्ययन करके समाज में मानव मूल्यों की स्थापना नहीं कर पायेंगे तब तक विज्ञान में कितनी भी उन्नति क्यों न कर लें मानव सभ्यता को बचा पाना मुश्किल है।

वैश्वीकरण के प्रभाव ने आज सारे उद्योगों को निजीकरण के तरफ मोड़ दिया है। भारतीय रेलवे ने 'तेजस' नाम से एक प्राइवेट ट्रेन की शुरुआत कर दी है, तो रेल मंत्रालय 150 और ट्रेनों तथा 50 स्टेशनों के निजीकरण पर विचार कर रही है। एम.टी.एन. एल. और बी.एस.एन.एल. का विलग्नीकरण किया जा रहा है। बी.एस.एन.एल. कर्मचारियों को वी.आर.एस. लेने का सुझाव दिया जा रहा है। पूरे भारतवर्ष की आयुद्य फैक्ट्रियों का निजीकरण करने का सरकारी मंशा है जिसका विरोध आर्डिनेंस फैक्ट्री की युनियनें कर रही हैं। हेलीकाप्टर बनाने वाली कंपनी 'हेल' पर भी निजीकरण का फंदा झूल रहा है। सरकार के अनुसार ये घाटे में चलने वाले उद्योग हैं। शोधार्थी को भी यह पता है कि आयुद्य फैक्ट्री में तैयार होने वाले एक नट की कीमत अगर दस रुपये पड़ती है, तो खुले बाजार में वह दो रुपये में उपलब्ध है। परंतु उनकी गुणवत्ता में अंतर है। शोधार्थी का मानना है कि अगर कोई बीमारी है तो उस बीमारी का इलाज ढूँढ़ना चाहिए, न कि उस प्रतिष्ठान को ही खत्म कर देना चाहिए। संजीव ने कोलियरी उद्योग में इन्हीं निजीकरण-राष्ट्रीयकरण के बीच पनप रहे भ्रष्टाचार के मुद्दे को **'कन्फेशन'** कहानी के माध्यम से उठाया है। सन् 1971 में जिस 'केलूडाँगा कोलियरी' का राष्ट्रीयकरण हुआ था, सरकार अब उसका निजीकरण करने जा रही है। जिन दलालों, पूँजीपतियों से सरकारी संपत्ति को लूट से बचाने के लिए, मजदूरों को शोषण से बचाने के लिए राष्ट्रीयकरण हुआ था, सरकार आज उन्हीं दलालों और पूँजीपतियों के हाथों में कोलियरी को सौंप देना चाहती है। कथाकार संजीव पल्लवी दी के माध्यम से सवाल करते हैं –"क्या कोयला

अब राष्ट्रीय संपत्ति नहीं रहा या आप लोग भेड़-बकरियाँ हैं जिसे पैसा लेकर वह किसी को भी बेच सकती हैं?"[6] इस राष्ट्रीयकरण में भ्रष्टाचार की शुरुआत तो पहले दिन ही हो गई थी, जब मजदूरों के रजिस्टर के साथ छेड़छाड़ हुई थी, पुराने मजदूरों के नाम को गायब कर ऐसे नये-नये नाम दर्ज किये गये थे, जिन्होंने लठैती छोड़कर कभी कोई मजदूरी की ही नहीं। इसका विरोध करने के कारण मजदूर नेता साहा बाबू की हत्या कर दी जाती है। अर्थात एक अघोषित निजीकरण इस राष्ट्रीयकरण के भीतर भी चल रहा था। कथाकार की लड़ाई इस घोषित और अघोषित दोनों प्रकार के निजीकरण के विरुद्ध है। सरकारी प्रतिष्ठानों में स्ट्रेंथ से अधिक वर्कर दिखाना, प्रोडक्शन में लगातार गिरावट दर्ज करवाना, मैनेजमेंट और मजदूर युनियनों की लूट और धोखाधड़ी के तहत है। जब कोई पल्लवी दी जैसी आग उगलने वाली नेता मजदूरों के हित में लड़ने आती है तो साजिश के तहत उन्हें प्रेम-विवाह में फँसा कर बच्चे पैदा करने के मशीन में तब्दील कर दिया जाता है। पल्लवी दी को पूँजीपतियों की यह चाल काफी देर से समझ में आती है कि उसके पिता का कत्ल एक झटके में किया गया था और उसका धीरे-धीरे जबह करके। वह मजदूरों के सामने वस्तुस्थिति का कन्फेशन करती है और उन्हें जागरुक करने के लिए उनके हक में खड़ी होती है।

आज पूरी दुनिया में सीमा-विस्तार, शक्ति प्रदर्शन और सर्वश्रेष्ठ बनने की होड़ मची हुई है। कुछ देश अपने वित्तीय पूँजी के बल पर आतंकवादी पालते हैं और उसका इस्तेमाल किसी दूसरे देश के खिलाफ अपने हित में करते हैं। ये विकसित देश दो विकासशील देशों को धर्म, जाति और सीमा विवाद के नाम पर आपस में लड़वाते हैं इससे उनका पहला फायदा यह होता है कि वे अपना हथियार इन मुल्कों को बेच सकते हैं, और दूसरा युद्ध में उलझ कर ये देश रह जायें, किसी कीमत पर विकास न कर पायें ताकि उनके उत्पादों के लिए इनका बाजार हमेशा खुला रहे। **'भूमिका'** कहानी के अंतर्गत वित्तीय पूँजी के वश में कठपुतली के तरह इस्तेमाल होने वाले विश्व के सभी युवाओं को संजीव सचेत करते हैं। उन्हें मानवतावादी पाठ

---

6. *संजीव, 'कन्फेशन', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 264*

पढ़ाते हैं। कहानी में कुछ स्वार्थी नेता और पूँजीपति हममें से ही कुछ लोगों को खरीदकर गुण्डे में तब्दील कर वोट प्रचार और बुथ कैप्चरिंग करवाते हैं। हमारे ही भाई-बहनों के घरों में आग लगवाते हैं और फिर रीलिफ बाँटकर सहानुभूति अर्जित करते हैं, जिसका परिणाम उन्हें चुनाव में जीत के साथ मिलता है। अपने ही लोगों के खिलाफ हथियार के तरह इस्तेमाल होने के कारण जो शारीरिक, मानसिक क्षय-क्षति होती है, हमारी होती है। इन धन्ना सेठों का कुछ नहीं बिगड़ता। वैश्विक सत्य को उद्‌घाटित करती यह कहानी पूरे विश्व के युवा को अपनी शक्ति पहचानने का आह्‌वान करती है और उसका उपयोग राष्ट्र, विश्व और मानवता के कल्याण में करने को प्रेरित करती है। आदिवासियों के बीच काम करने आई एक महिला, जिसने एक बच्चे को आग से बचाते-बचाते अपनी आँखें खो दीं, हनुमान को रामायण का सबसे भयंकर पात्र बताती हैं –"अकूत ताकत है हनुमान के पास, लेकिन जिसे अपनी ताकत का पता नहीं ...और उसका इस्तेमाल क्या हुआ? ...ज़िंदगी भर राजा रामचंद्र की गुलामी करता रहा, जिन्होंने उसे रावण और मेघनाद के खिलाफ इस्तेमाल किया ...दुश्मनी रावण से हो सकती है, चलो माना मगर लंका के साधारण लोगों ने उनका क्या बिगाड़ा था जो लंका में आग लगा दी और बेकसूर लोग –परिंदे और जानवर तक जल मरे, बच्चों तक को नहीं बख्शा?"[7] दुनिया में हो रहे परमाणु परीक्षणों की होड़, एक-दूसरे को परमाणु युद्ध की धमकी देते देश, जहाँ-तहाँ होते आत्मघाती बलास्ट, दंगा-फसाद, क्या यह नहीं दर्शाते कि हम अपनी सोचने समझने की शक्ति खो चुके हैं? हम यह युद्ध किसके लिए कर रहे हैं? हम यह क्यों नहीं समझ पा रहे हैं कि हमारी गोली जिसे लग रही है, वह भी हमारी तरह हाड़-मांस का बना एक इन्सान ही है। हम पूँजीपतियों की इस धूर्तता को क्यों नहीं समझ पा रहे हैं?

'खोज' कहानी में प्रतिभा पूँजी के यहाँ बंधक पड़ी है। 'सगुनिये' विलक्षण मानवीय प्रतिभा संपन्न मध्यवर्ग के प्रतीक है जिनके बुद्धि, विवेक, श्रम और कर्म के बल पर सारी आधुनिक तकनीक और सुविधाएँ उपलब्ध हैं, परंतु ऐसी प्रतिभाओं को कुछ पूँजीपतियों ने

---

7. संजीव, 'भूमिका', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करणः 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 289

अपने हरम में सजा रखा है। यह मध्यवर्गीय प्रतिभा ही है जो अपने वैज्ञानिक तकनीकी प्रयोगों के बल पर मौसम, वर्षा, सुनामी, भूकंप आदि की सूचना हमें देता है। धरती के नीचे छिपे रत्न, कोयला, हीरा, सोना आदि का खोज मध्यवर्ग ही अपने ज्ञान के बल पर करता है। उसने आकाश मार्ग से होते हुए मंगल और चाँद तक की यात्राएँ तय की है। बहुत सारे ऐसे भारतीय या तीसरे विश्व के वैज्ञानिक विकसित देशों के लिए कार्य कर रहे हैं। ये विकसित देश इनके वैज्ञानिक खोजों का इस्तेमाल अपने हित में कर रहे हैं। सबसे ताकतवर बनने की होड़ में आज विश्व के कई देश शामिल हो गए हैं और मोहरा बनाया गया है वैज्ञानिक आविष्कारों को। युद्ध में लड़ने वाले सारे सैनिक भी मध्यवर्गीय होते हैं। पूँजीपतियों के लिए मध्यवर्ग बलि का पाठा होता है। **'सागर सीमान्त'** कहानी में भी समुद्र में तूफान आने की सूचना रहने के बावजूद पूँजीपति उसे मछुआरों से छुपा जाता है और उन्हें समुद्र में मछली पकड़ने भेज देता है, क्योंकि उसके लिए इन मछुआरों की जिंदगी की कोई कीमत नहीं है, उसे तो सिर्फ मछलियों से मतलब है। मुट्ठी भर पूँजीपति सारे विश्व के अधिकांशतः अर्थ पर पीढ़ी दर पीढ़ी कुंड़ली मारकर बैठे हुए हैं। कथाकार संजीव गुलाब सगुनिये की आवाज में कहते हैं –"हमीं ने मर-खपकर धरती से रतन निकालकर उनके खजाने भरे, हमीं सात पुश्तों से इस पर पहरा देते रहे और हमीं खोज भी करते रहे, अपनी जान हथेली पर रखकर; किसलिए...? एक जन्म में उनके भोग की लिप्सा पूरी नहीं होती। सो अगला जन्म, उससे अगला जन्म भी, जन्म-जन्मांतर वे भोगते रहें।"[8] कथाकार का मानना है कि देश और दुनिया में जो भी श्रेष्ठ और सुंदर है, पूँजीपति उस पर एकाधिकार समझते हैं। जो चीज भी उनके नजरों को भा जाती है, उसे कल-बल-छल से हथिया लेना उनके जीवन का एक ध्येय बन जाता है। कहानी में राजा कौशलेंद्र अपनी संपत्ति की रक्षा के लिए सगुनिये मंगल बाबा की बलि देकर उन्हें यक्ष बना देता है। सारे चीजों के खोज का दावा करने वाले सगुनिये अपने ही वंश के बलि होते लोगों के रहस्य की खोज नहीं कर पाते हैं। अतः कथाकार की खोज केवल खजाने की खोज नहीं है बल्कि साधारण जनता

---

8. *संजीव, 'खोज', संजीव की कथा यात्रा तीसरा पड़ाव, संस्करणः 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 178-179*

को भ्रम के जाल में उलझाकर छलने वाले पूँजीपतियों के छल नीति की खोज है। वह मध्यवर्ग को पूँजीपतियों का हथियार बनने से सचेत करते हैं, उनके अंदर आत्मसम्मान की भावना को जागृत करना चाहते हैं।

'हलफनामा' कहानी भी पूँजीवादी व्यवस्था की त्रासदी है। आज इंजीनियर, तकनीशियन या मजदूर सबकी स्थिति बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगे ज़रखरीद गुलाम-सी रह गई है। ये कंपनियाँ उन्हें जब चाहे खरीद सकती हैं, जब चाहे नौकरी से निकाल सकती हैं। उनका अपना कोई अस्तित्व और अधिकार नहीं रह जाता है। वह सिर्फ अपने मालिक के गाड़ी का स्टेपनी बनकर रह सकता है। वह स्वतंत्र रूप से सोच भी नहीं सकता। उसकी सोच और शक्ति सिर्फ और सिर्फ कंपनी के हित में होनी चाहिए। तभी तो **'हत्यारा'** कहानी में प्रदीप अपने पिता की मृत्यु की खबर सुनकर भी इसलिए नहीं आता क्योंकि कंपनी का अरबों का नुकसान हो जाएगा। श्रमिकों का जीवन सिर्फ कर्म करने के लिए है, फल तो सेठ-साहुकारों की रखैल है। वह इस पूँजीवादी व्यवस्था के हाथों की कठपुतली है। यह सेठ-साहुकार अपने अनैतिक व्यवहारों एवं असल मुद्दों को छुपाने के लिए श्रमिकों को भौतिक प्रसाधनों के जाल में फँसाते हैं। इन भौतिक प्रसाधनों की चाह उनके मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन में कलह का कारण बनती है। ये वही लोग हैं जो जनता की सारी चेतना को कुंद करना चाहते हैं। कथाकार इनकी सच्चाई को उद्घाटित करता है –"सेठ लोग सारी ऑक्सीजन पी गए, हरियाली चाट गए, धरती की सारी संपदा, सारी प्रतिभा, गरज की सारी ऊर्जा इनकी आँतों में समा गई ...और हम? हम इनके लिए पेड़ लगाकर ऑक्सीजन पैदा करें। गर हमें कुछ लेना है तो इनसे लें -- संसाधन से लेकर प्रसाधन और प्रसाधन से लेकर परमाणु बम और दूसरे हथियार ! यानी हम जीएँ तो इनके रहम पर !"[9] प्रदूषण के नाम पर फैक्ट्री बंद होने की धमकी देकर, चिमनी लगवाने के नाम पर मजदूरों का आधा तनख्वाह काट लेते हैं। साधारण मनुष्य की जरूरतें और प्राथमिकताएँ तय करने का अधिकार उन्हें नहीं बल्कि इन पूँजीपतियों को है। देश की

---

9. संजीव, 'हलफनामा', संजीव की कथा यात्रा तीसरा पड़ाव, संस्करण: 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 50

राजनीति की दशा-दिशा भी ये पूँजीपति ही तय करते हैं। इनकी ड्राइंगरूम में ही सरकारें बनती-गिरती हैं। अतः जिस प्रकार बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा के लिए सरकार तत्पर है, उसी प्रकार वित्तीय शोषकों, पूँजीपतियों से देश की अंदरुनी रक्षा की अपेक्षा कथाकार सरकार से करता है।

'आहट' कहानी में बाजारवाद के प्रवेश ने कला और श्रम को खतरे में डाल दिया है। आकाश एक फिल्म बनाना चाहता है, जिसके लिए फाइनेन्सर की आवश्यकता है परंतु राजनीति की तरह फिल्मों पर भी कुछ परिवारों का वर्चस्व है, निर्देशन, अभिनय, संगीत किसी भी क्षेत्र में वे नई प्रतिभा को बर्दाश्त नहीं कर सकते हैं अचानक अग्रवाल साहब के रूप में उसे एक प्रड्यूसर मिल जाता है। वह नौटंकी के स्टेज से एक नायिका आकृति को उठाता है। उसकी यह फिल्म भी उपभोक्तावादी संस्कृति के विरुद्ध खड़े नायक पल्लव और नायिका रूपा की प्रेम कहानी है। नायक पल्लव कोई उद्देश्यपरक फिल्म बनाना चाहता है, परंतु मजबूरी में उसे उपभोक्तावादी कंपनियों के लिए विज्ञापन बनाने पड़ते हैं। परंतु उपभोक्तावादी कंपनियों के प्रति पल्लव के ढोंग की आहट को रूपा भांप नहीं पाती है। वह विज्ञापन फिल्मों के लिए रूपा का इस्तेमाल करता है, उपभोक्तावादी संस्कृति से घृणा दिखाकर रूपा का न्यूड फिल्म बना लेता है और उसे उसकी मर्जी के विरुद्ध फिल्म फेस्टीवल में भेज देता है। खैर दो साल तक कड़ी मेहनत करके आकाश उपरोक्त कहानी पर **'आहट'** फिल्म बनाता है। परंतु प्रोड्यूशर अग्रवाल साहब उसे फिल्म फेस्टीवल से निकाल लेते हैं और नायिका आकृति से विवाह कर लेते हैं। कथाकार यह दर्शाना चाहते हैं कि चाहे वह किसी का भी श्रम, सपना, अरमान, वर्तमान, भविष्य कुछ भी हो, अग्रवाल जैसे पूँजीपति उसे खरीद सकते हैं। पूँजी के बल पर नायिका को अपने बेडरूम की तिजोरी में बंद कर सकते हैं। पूँजीपतियों के मकड़जाल में फँसा आकाश अपने मुक्ति के लिए छटपटाता है। **'आहट'** फिल्म की नायिका रूपा जो फिल्म में उपभोक्तावादी संस्कृति के विरुद्ध आत्महत्या करती है, आकाश को सजग करती है –"यहाँ परस्पर उपभोग की केलिक्रीड़ा-विलास में मकड़ी अपने प्रेमी का सर चट से अलग कर देती है। मकड़ा, क्या पता उस जुनून में इस आहट को भाँप पाता है या नहीं, मैं तो नहीं ही भाँप पाई

थी, मगर तुम ...?"[10] मगर सिर्फ आकाश ही नहीं, आकाश के जैसे और भी युवाओं, बुद्धिजीवियों छात्रों समेत देश की खासी आबादी बाजारवाद के इस आहट को नहीं समझ पा रही है, जो आगे बढ़कर सब कुछ निगल जाने को तैयार है।

'नकाब' कहानी हमें समाज के यथार्थ से परिचित कराती है। हमारी आँखें सिर्फ सुंदर, श्रेष्ठ, ग्लैमर और चकाचौंध भरी दुनिया को देखना चाहती हैं। सुंदर-सुंदर कला-कृतियाँ और साहित्य, खूबसूरत नारियाँ, ग्लैमर से भरे शापिंग मॉल, ऊँची इमारते, वृहत्त उद्योगों पर ही हमारी नजरें टिकती हैं। इन ग्लैमर और चकाचौंध भरी दुनिया के पीछे दम तोड़ते छोटे-छोटे दुकानदार, बेघर होते बस्तियों के लोग और कराहते लघु उद्योगों की कड़वी सच्चाई को कोई नहीं देख पाता। कथाकार का यह साफ संकेत है कि पूँजीपतियों, सेठों, साहूकारों के पास जो सुंदर-सुंदर बंगले, गाड़ियाँ, साधन-प्रसाधन की सामग्री मौजूद है, वह निचले तबके का खून चूसकर ही है। अगर समाज के नीचले अंगों को स्वस्थ, सुंदर, सशक्त और मजबूत बनाना है तो उपरी अंगों के कोशिकाओं और मांसपेसियों का ट्रासप्लांट नीचली अंगों में करवाना होगा। कहानी का नायक यशवंत एक चित्रकार है जो एक अनिद्य सुंदरी के रूप सौंदर्य के प्रति आकर्षित है। वह उसका एक न्यूड तस्वीर बनाना चाहता है। परंतु जब वह उसके सौंदर्य की सच्चाई देखता है तो भय से आँखें बंद कर लेता है क्योंकि उसके कमर से नीचे के अंग कुत्सित और कुरूप थे जिसे वह एक जिल्द नुमा खोल से ढँककर छुपाए हुए थी। वह आधी सुंदर थी आधी कुरूप –"ऊपर के जो अंग स्वस्थ थे, वही नीचे के अंगों की नियति तय करते रहे, खुद सारी खुराक खींचते रहे, बाकियों की उन्हें परवाह न थी।"[11] ठीक इसी प्रकार समाज के ऊपरी पायदान पर बैठा पूँजीपति ही मध्यवर्ग और निम्नमध्यवर्ग की नियति ठीक करता है। उद्योग कहाँ लगेगा? सस्ते और मेहनती मजदूर किस क्षेत्र में मिलेंगे? स्कूल कहाँ खुलेगा?

---

10. संजीव, 'आहट', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण: 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 253

11. संजीव, 'नकाब', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण: 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 239

अर्थात जनता को शिक्षित करना है या नहीं? सरकार किसकी बनेगी? कुल मिलाकर वह अपना पूँजी का विस्तार कहाँ से ज्यादा से ज्यादा कर सकता है, शोषण चक्र कहाँ ज्यादा चला पाता है। जनता की स्थिति से उसे कुछ लेना-देना नहीं। लेखक इन्हें नायिका के चंद खुदगर्ज अंगों के समान मानता है जो सारी जीवनशक्ति का रस चूस कर लहरा रहे हैं और नीचे के अंग विकलांगता और खुदखुशी की खाई में धीरे-धीरे समा रहे हैं। हमारे देश का अन्नदाता भी आज विकलांग है, विदर्भ में किसानों की आत्महत्या की संख्या और कारण किसी से छुपे नहीं हैं। सूचना क्रांति और प्रौद्योगिकी की मदद से आज देश का प्राय: सभी युवा यह जानते हैं कि देश की नब्बे प्रतिशत संपदा पर सिर्फ दस प्रतिशत सेठों-साहुकारों का कब्जा है, पर किसी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगता। जिस प्रकार कहानी की नायिका न तो अपने अंगों का ट्रांसप्लांट करवाने को तैयार होती है न ही अपनी कुरूपता स्वीकार करती है। उसी प्रकार पूँजीपति भी मध्यवर्ग के उत्थान के लिए किसी भी प्रकार की आर्थिक योजना को तैयार नहीं दिखते और अर्थ के इस विषम बँटवारे में भी कोई बुराई नहीं देख पाते हैं।

बाजार समाज के रग को पहचानता है। मनुष्य के जीने और भोगने की लिप्सा को जानता है। स्वस्थ्य और सुंदर जीवन के लिए नित नये-नये दवाओं और प्रोडक्टों के तरफ उसके आकर्षण को समझता है। पारंपरिक दवाओं से ऊबकर हर्बल की तरफ मुड़ते जनता के मूड को भी भाँप पाता है तभी तो इसे कैश करना भी जानता है। **'लिटरेचर'** कहानी में देशी-मूल्यों और फार्मूलों को कैश करा लेने की कोशिश है। बाजार अब नया-नया मुखौटा लगाकर हमारे समाने आता है। जीवनदायिनी प्रोडक्ट देने का वायदा करता है और मौत के गहन अंधकार में ढकेल जाता है। अपने पूँजी के बल पर वह मनुष्य के ज्ञान, मूल्य और स्वतंत्रता को खरीदकर अपने हित में उनका उपयोग करने में सक्षम है। कहानी में बाजारवाद इस कदर हावी है कि वह दवा पहले बनाता है और उस दवा के लिए रोग गढ़ने का प्रचार-प्रसार बाद में भाड़े के किसी लिटरेचर से करवाता है। साहित्यकार दीपक के पिता को स्थानीय वनस्पतियों और उनके औषधीय गुणों का अगाध ज्ञान था। वह आदिवासी इलाके में आदिवासियों को अंग्रेजी दवाओं के दुष्प्रभाव और शराब की बुराइयों के खिलाफ जागृत कर रहे थे, जिसके परिणामस्वरूप उनकी हत्या कर दी जाती है। उनके साथ रहने के कारण दीपक में भी कुछ-

कुछ औषधीय गुणों का ज्ञान आ जाता है। साहित्यकार तो वह है ही, उसके इन्हीं गुणों को जे.जे. फॉर्मेटिकल्स दवा कंपनी इनकैश करवा लेना चाहती है। ग्लोबलाइजेशन के प्रभाव से अपने अंतिम पायदान पर खड़ी जे.जे. फार्मेटिकल्स कंपनी चाहती है कि दीपक उसके कंपनी के दवा के लिए विज्ञापन करे। दवा कंपनी ने तैयार कर ली है, उसके लिए रोग तैयार करने और उसका धाँसू-सा नामकरण करने की जिम्मेदारी दीपक की है। अर्थात मिथ क्रियेट करना और उसे टूटने न देने की जिम्मेदारी बाजार ने साहित्य को सौंपी है। साहित्य, कला, संस्कृति और मीडिया का सही उपयोग करना जानता है बाजार – "हाँका बोलकर खदेड़ लाओ पूरे जंगल से उसकी कातर चेतना को हमारी इस दवा की शरण में, जहाँ एक अभयदान होगा कि अगर इस दवा का नियमित सेवन किया जाए तो वह बच जाएगा। और सिर्फ हमीं, यानी हमारी दवा ही उसे बचा सकती है, बाकी कोई नहीं।"[12]

इस तरह देश की औषधीय संपदा और मानवीय प्रतिभा का शोषण कर समाज के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करने वाली दवा कंपनियों के रेकेट का भंडाफोड़ करना कथाकार का उद्देश्य रहा है। बाजारवाद के इस दौर में *'लिटरेचर'* के लिए भी अपनी अस्मिता बचाने की चुनौती है।

सूचना और प्रौद्योगिकी के विकास ने आज युवाओं को इतने सूचनाओं से लैस कर दिया है कि माइकल जैक्सन के सेक्स चेंज से लेकर विश्व सुंदरी प्रतियोगिता में इस बार किसे चुना गया, जिसे चुना गया उसके बॉडी का नाप जोख क्या है? किस सुंदरी का किस राजपुरुष के साथ अफेयर्स है तथा चिरंतन युवा रहने के लिए किस दवा का प्रयोग करना चाहिए, सारी जानकारियाँ हैं परंतु अपने देश में हो रहे भूख से मौत की खबर से वे अनजान है। अपहरण, लूट, फिरौती और बेरोजगारी के दंश से आत्महत्या करते प्रतिभावान छात्रों की घटनाओं से वे बेखबर हैं। वे तो बाजारों की चकाचौंध में आँखों पर रंगीन चश्मा चढ़ाये पॉप कल्चर की धुन

---

12. संजीव, 'लिटरेचर', संजीव की कथा यात्रा तीसरा पड़ाव, संस्करण: 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 47

पर थिरकने में व्यस्त हैं। उन्हें बाजार का असली खेला पता ही नहीं है। एश्वर्या राय, सुष्मिता सेन, प्रियंका चोपड़ा जैसी विश्व सुंदरियों का बार-बार भारत से चुने जाने के पीछे बाजार के चाल को समझना होगा। निस्संदेह इसका संबंध हमारे देश का मान, सम्मान और अभिमान बढ़ाने तक ही सीमित नहीं है बल्कि बहुसंख्यक अंतरराष्ट्रीय कंपनियों के प्रोडक्ट के लिए बाजार तैयार करने में उनकी प्रसिद्धि का इस्तेमाल के लिए है। संजीव इस प्रकार के विश्व सुंदरी प्रतियोगिता के नाम पर नारी को अर्द्धनग्न करके उसकी नुमाईश के खिलाफ हैं जिसका परिचय उन्होंने अपने आरंभिक कहानी **'प्रतिद्वंद्वी'** में ही दे दिया था जहाँ कथानायक मास्टर बालिकाओं के स्कूल में हो रहे प्रदर्शनी में बच्चियों के नुमाईश का विरोध करता है। परंतु इससे अब हमारे देश के युवा का नाक नहीं कटता है क्योंकि वह बनिया के बनाये जुए के फंदे यानी शेयर मार्केट में फँस चुका है। **'जे एहि पद का अरथ लगावे'** कहानी में बाबू गनेश सिंह समाज की इस स्थिति से चिंतित हैं –"एक जुआड़ी था तो एक द्रौपदी नंगी हुई थी, हियाँ तो हजारों जुआड़ी हैं और बाकी जो हैं, दाँत चियार-चियार के देख रहे हैं, सो हजारों द्रौपदियाँ नंगी होंगी।"[13] खैर, हम धृतराष्ट्रों को इससे क्या फर्क पड़ता है! हम तो पैसा को दो गुना, तीन गुना करने के चक्कर में अच्छे-अच्छे कंपनियों के शेयर खरीदने के लिए अपने गहने, रिक्शे सब बेच दिए। जब कंपनियों के पास अथाह पैसा हो गया, तो सारा पैसा लेकर पूँजीपति फरार हो गए। कंपनी डूब गई, शेयर डूब गये, इसके साथ ही बिना काम किये अमीर बनने के सपने भी। इस प्रकार आज हमारे सामने कई ऐसी कंपनियों के डूबने के उदाहरण हैं जिसमें गरीब जनता के अरबों रुपये फँसे हुए हैं। यह पूँजीपतियों के माया का संसार जनता पहचान नहीं पाती है पुलिस और सरकारें अंधी-बहरी हो जाती हैं, अपने ही देश में उन्हें ढूँढ़ नहीं पाती हैं और वे बड़े आराम से विदेश गमन कर जाते हैं और इधर शेयर होल्डर्स आत्महत्या कर रहे हैं –"मुन्नू बाबू के खरीदे हुए शेयर्स परसों रातों-रात गिर गए थे। सारे गाँव की संपत्ति दाँव पर लगी थी। कल भी दुआर पर अपने पैसे वापस माँगनेवालों का ताँता लगा हुआ था। चुन्नू बाबू के

---

13. संजीव, 'जो एहि पद का अरथ लगावे', संजीव की कथा यात्रा तीसरा पड़ाव, संस्करण: 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 392

दंतविहीन मुखवाले काका भीड़ को समझा-बुझाकर शान्त करने आए, मगर किसी ने एक न सुनी।"[14] वैसे आत्महत्या तो हमारा किसान भी कर रहा है। सरकार, सरकारी अधिकारियों और पूँजीपतियों के मिलीभगत से बनाये गये नीतियों के कारण। अपने मेहनत से उपजाये गये धान को लेकर वह सरकारी मंडियों का चक्कर लगा रहा है, सरकार द्वारा तय न्यूनतम समर्थन मूल्य प्राप्त करने के लिए, पर कहीं कोई सुनवाई नहीं। हार कर उसे बनिया के शरण में जाना पड़ता है, यह सेठ-साहूकार अनाज की जो कीमत बताते हैं, वह किसान के लिए अपमानजनक है और उन्हें आत्महत्या के लिए उकसाता है। अतः किसानों, लूटे हुए शेयर होल्डर्स, प्रताड़ित कॉपरेटिव बैंक के ग्राहकों, शारदा-नारदा जैसे कंपनियों के पीड़ित ग्राहकों के आत्महत्या के पीछे बाजारवाद ही है।

आज विज्ञान, कंप्यूटर और इंटरनेट के युग में विज्ञान जहाँ एक ओर हमारे लिए वरदान सिद्ध हुआ है, वहीं दूसरी ओर अभिशाप भी बनता जा रहा है, अपनी सहुलियत के लिए मनुष्य ने जो मशीनें बनाई थीं, वही भष्मासुर बनकर आज उनको निगलती जा रही हैं। ग्लोबलाइजेशन के इस दौर में पूँजीपतियों ने वैज्ञानिक सेवाओं को अपने पक्ष में मोड़ लिया है। **'रह गईं दिशाएँ इसी पार'** उपन्यास में भी पूँजीपति वर्ग विज्ञान और वैज्ञानिकों का दोहन अपने हित में कर रहा है। अथाह संपत्ति का मालिक मि. विस्नु बिजारिया अजर और अमर रहना चाहता है। इसके लिए वह नाना तिकड़म आजमाता है। वह रेड फ्लेश, फिश और यहाँ तक कि मनुष्य के मांस व्यापार का बड़ा तस्कर है। वहीं दूसरी ओर धर्म-कर्म के नाम पर मंदिरों, अनाथाश्रमों और चर्चों में दान भी करता है। वह डाक्टरों और अनाथ बच्चों को अपने नर्सिंग होम और अनाथाश्रम में पाल कर रखता है। उसके *'अस्तित्व रिसर्च सेंटर'* में जानवरों से लेकर मनुष्य तक पर रिसर्च होते हैं। यहाँ चूहों में पहले कैंसर ग्रोथ करवाकर फिर उसके उपचार के लिए उस पर दवा का प्रयोग होता है, इसी प्रकार चूहों पर जींन का परीक्षण भी चलता है अर्थात मनुष्य को जो-जो बीमारियाँ होती हैं, उन बीमारियों को पहले चूहों में ग्रोथ करवाया जाता है

---

14. संजीव, 'जो एहि पद का अरथ लगावे', संजीव की कथा यात्रा तीसरा पड़ाव, संस्करणः 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 390

फिर उस पर दवा का प्रयोग किया जाता है। मि. बिजारिया अपने अनाथालय में बच्चों को पालता है और जब चाहे वह उन पर भी चूहों जैसा प्रयोग चलाता है। कथाकार संजीव यहाँ पूँजीपतियों के छिपे चेहरे को बेनकाब करते हैं कि अनाथ बच्चों को पालना सिर्फ और सिर्फ उनके हितार्थ है, सेवार्थ नहीं। इतना ही नहीं अपने को चिर युवा बनाये रखने के लिए अपने इनएक्टिव आर्गेन का ट्रांसप्लांट करवाते हैं, अनाथालय के बच्चों में वे अंग डेवलप करवाकर अपने शरीर के लिए उन अंगों का इस्तेमाल करते हैं। मानव मांस के व्यापार में भी इन बच्चों का इस्तेमाल चारे की तरह किया जाता है। वैज्ञानिकों का इस्तेमाल वह अपनी बढ़ती उम्र को कम करने के लिए करता है। भूमंडलीकरण के प्रभाव ने खेती करने के हमारे पारंपरिक देशी खाद्य के स्थान पर विदेशी पद्धति को स्थापित कर दिया है। आज बाजार में उपलब्ध अधिकांशतः सुंदर-सुंदर फल, फूल, सब्जियाँ इत्यादि सस्ते टॉक्सीन हार्मोन इंजेक्शन द्वारा उगाये जा रहे हैं जो हमारे स्वास्थ्य के लिए बेहद खतरनाक है जबकि बड़े-बड़े पूँजीपति सिर्फ अपने फार्महाउस में देशी पद्धति से उगाये गए सब्जियों-फलों का सेवन ही करते हैं। गाय-भैंसों को रोज पचास पैसे का टॉक्सीन इंजेक्शन लगाकर पैन्हाया और दूहा जा रहा है। इस प्रकार के हार्मोन युक्त पदार्थों के सेवन से हम नाना प्रकार की बीमारियों से ग्रस्त हो रहे हैं। शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता घट रही है। अर्थात खेती में इन वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग सिर्फ बढ़ती आबादी का पेट भरने के लिए नहीं है बल्कि उनके अंदर रोग का संचार करके कमजोर और शिथिल पीढ़ी तैयार कर देने की है ताकि वे अपनी उन्नति के बारे में सोच ही न पायें और विदेशी कंपनियाँ यहाँ दवा साहित हॉर्लिक्स, कॉम्प्लान और बोर्नविटा का व्यापार धड़ल्ले से करती रहें।

भारत एक कृषि प्रधान देश है और भारतीय अर्थव्यवस्था में किसानों का बहुत बड़ा योगदान है। परंतु उनकी खुद की स्थिति आज संकट के दौर से गुजर रही है। किसानों की इस बदहाली के पीछे बीज, खाद, ऋण, मुआवजे, कीटनाशक, बैंक, महाजन, सरकार, पूँजीपति आदि सभी हैं। जिस देश में आज भी भूख से मौत होती हो वहाँ एफ. सी. आई. में गोडाउनों के कमी के कारण हजारों मैट्रिक टन गेहूँ बारिश में पड़े-पड़े सड़ जाते हैं। परंतु **'फाँस'**

उपन्यास में कथाकार संजीव इसे संयोग नहीं बल्कि पूँजीपतियों का षड्यंत्र मानते हैं – "दरअसल वह सड़ नहीं गया, बल्कि उसे सड़ जाने दिया गया। क्यों...? सड़े हुए गेहूँ से शराब बनती है। लग गयी बोली। उस सड़े हुए गेहूँ को सस्ते में उन्हीं लोगों ने ले लिया जिन्होंने उसे खुले में छोड़कर नष्ट किया था। पहले सड़ाया, फिर शराब बना दी –सस्ते में खरीदकर। ट्रिपल क्राइम।"[15] वास्तव में शराब भी किसान समस्या का एक प्रमुख कारण है। इसके वजह से भी बहुत सारे किसानों ने अपनी जाने गँवाई हैं। सरकार के शराबबंदी कानून का मखौल उड़ाते हैं, शराब के ठेके के मालिक और पूँजीपति। नशाखोरी से रोकने वाले हमारे थाने खुद ही शराब के ऊपर पलते हैं और इसके उच्छेद के लिए वे महिला मंडल को आगे कर देते हैं। शराब बेचने वाले लोगों का अपना तर्क है कि वे चोरी-चकारी तो नहीं कर रहे हैं, उन्हें दूसरा धंधा उपलब्ध करा दिया जाय तो वे शराब बेचना छोड़ देंगे।

निष्कर्ष : भूमंडलीकरण एक प्रक्रिया है जिसका संबंध मूलतः अर्थ-व्यवस्था से है। इसका उद्देश्य –विश्व के कमजोर, गरीब और पिछड़े देशों का अर्थ-व्यवस्था, संसाधनों एवं श्रम पर अपना आधिपत्य जमाना है और इसके लिए ये पूँजीवादी शक्तियाँ पूरी दुनिया को सौंदर्य प्रतियोगिता के नाम पर अंग प्रदर्शन, सेक्स, शराब, वालमार्ट, एमाजॉन, बिग बाजार जैसे ग्लैमर में उलझा कर भूख, बेरोजगारी, गरीबी, अशिक्षा, सूखा, उजड़ते खेत, जहर खाते किसान जैसे मुद्दों को हासिये पर धकेल दे रहे हैं। आज हमारे समाज, संस्कृति और साहित्य सबका बाजारीकरण हो गया है। विज्ञापनों का बोलबाला है। प्राइवेट टीवी चैनलों की बाढ़ है जिनका उद्देश्य अपने प्रायोजक दलों के हितों का ध्यान रखना है। ऐसे में कबीर, निराला, दिनकर, नागार्जुन, मुक्तिबोध, धूमिल, महाश्वेता देवी जैसी रचनाकारों की रचनाएँ ही हैं जो किसानों, मजदूरों, दलितों, आदिवासियों तथा प्रत्येक शोषित-पीड़ित जनता के साथ खड़ी हैं। शोधार्थी का मानना है कि संजीव भी इसी धारा को मानने वाले जनधर्मी कथाकार हैं। वैश्वीकरण के इस नये दौर में विश्व-पूँजीवाद, बाजारवाद और उपभोक्तावाद के परिदृश्य का

---

15. संजीव, 'फाँस', प्रथम संस्करण : 2015, द्वितीय संस्करण : 2016, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 202

संजीव के कथा साहित्य में तीव्र विरोध दिखता है। वे बाजारवाद के दुष्परिणामों के प्रति चिंतित हैं। मध्यवर्ग के अंदर पैदा हुए इस उपभोगवादी नजरिये का तीव्र विरोध वे अपनी पहली ही कहानी **'क़िस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का'** में करते हैं। शिक्षित बेरोजगार का बीमा कंपनी के एजेंट के रूप में कार प्राप्त करने की उच्च आकांक्षा रखना सुविधा लोलुपता के कारण ही है। **'हत्यारा'** कहानी में प्रदीप के पिता पूँजीपतियों और पूँजीपतियों के ज़रखरीद गुलामों को उजड़े मुहल्लों, कारखानों और बेरोजगारी का दोषी मानते हुए उसे **'हत्यारा'** करार देते हैं।

'नस्ल' कहानी में जिस मध्यवर्गीय प्रतिभा का उपयोग परिवार, समाज, राष्ट्र, जाति या दुनिया की बेहतरी के लिए हो सकता था, वह बनिया का कारोबार बढ़ा रहा है। 'ब्लैक होल' कहानी में उपभोक्तावादी संस्कृति की भयानक प्रतिस्पर्धा से ग्रसित होकर एक सामान्य गृहिणी अपने बेटे अंक पर पढ़ाई का अतिरिक्त बोझ डालकर उसे रेस का घोड़ा में तब्दील कर 'गियरअप' करती है। पढ़ाई के दबाव में ही वह आत्महत्या कर लेता है।

आज संवेदना और मानव मूल्यों का लोप हो रहा है। अंधी खुदगर्ज विकास यात्राओं के दुष्परिणाम, विकसित देशों द्वारा अपने-अपने हथियार छुपाकर दूसरे देश के हथियारों को नष्ट करने के सुझाव, गोरों के चाबूक से कराहते अश्वेतों की भीड़, यह मानव सभ्यता के विनाश का 'काउंट डाउन' नहीं तो और क्या है?

वैश्वीकरण के प्रभाव ने आज रेल, हेल, एमटीएनल, बीएसएनएल, आयुध फैक्ट्री जैसे सारे उद्योगों को निजीकरण की तरफ मोड़ दिया है। **'कन्फेशन'** कहानी में कोलियरी उद्योग में इन्हीं निजीकरण-राष्ट्रीयकरण के बीच पनप रहे भ्रष्टाचार के मुद्दों को उठाया गया है। जबकि **'भूमिका'** कहानी के अंतर्गत वित्तीय पूँजी के वश में कठपुतली की तरह इस्तेमाल होने वाले विश्व के सभी युवाओं को संजीव सचेत करते हैं, उन्हें मानवता का पाठ पढ़ाते हैं। **'हलफनामा'** कहानी में इंजीनियर, तकनिशीयन या मजदूर सभी सिर्फ अपने मालिक की गाड़ी का 'स्टेपनी' बनकर रह सकता है। उसका कार्य सेठ-साहुकारों के लिए पेड़ लगाकर ऑक्सीजन पैदा करना है। कथाकार हमें बाजारवाद के 'आहट' को भाँपने के लिए प्रेरित करते हैं जहाँ

किसी के भी सपने, श्रम, अरमान, वर्तमान, भविष्य को काई महत्व नहीं है। पूँजी के बल पर नायिका को अपने बेडरूम की तिजोरी में बंद कर सकते हैं ये पूँजीपति। **'नकाब'** कहानी में कथाकार का साफ संकेत है कि पूँजीपतियों, सेठों, साहुकारों के पास जो सुंदर-सुंदर बंगले, गाड़ियाँ, साधन-प्रसाधन की सामग्री मौजूद है, वह नीचले तबके का खून चूसकर ही है।

बाजार समाज के रग को पहचानता है। पारंपरिक दवाओं से मुड़कर हर्बल की तरफ मुड़ते जनता के मुड को भी भाँप पाता है तभी तो इसे कैश कराना भी जानता है। **'लिटरेचर'** कहानी में बाजारवाद इस कदर हावी है कि वह दवा पहले बनाता है और उस दवा के लिए रोग गढ़ने का प्रचार-प्रसार बाद में भाड़े के किसी लिटरेचर से करवाता है। सूचना और प्रौद्योगिकी के विकास ने पूँजीपतियों को और ताकतवर बनाया है। विदेशी पूँजी से हमारा बाजार पट गया है।

अतः उनिवेशवाद, पूँजीवाद, संचार क्रांति, बाजारवाद, शेयर बाजार, विश्व सुंदरी प्रतियोगिता, विज्ञापन का बाजार, उपभोक्ता संस्कृति आदि सभी मुद्दों तक संजीव के कथा साहित्य की पहुँच है।